

[2024] 1 एस.सी.आर. 517 : 2024 आईएनएससी 36

आसमा लतीफ़ और अन्य

बनाम

शब्बीर अहमद एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 9695/2013)

12 जनवरी 2024

[न्यायमूर्ति बी.आर. गवई, न्यायमूर्ति दीपांकर दत्ता और न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार]

विचारार्थ मुद्दा

क्या आदेश दिनांक 05.08.1991 (जिसके तहत आदेश VIII, सीपीसी की धारा 5 और 10 के तहत आवेदन को मुकदमे में प्रतिवादी संख्या 2 के खिलाफ फैसला सुनाने के लिए ट्रायल कोर्ट द्वारा अनुमति दी गई थी) में क्षेत्राधिकार संबंधी इतनी गंभीर त्रुटि थी कि तत्पश्चात् तैयार की गई डिक्री निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य नहीं है तथा यह आपत्ति कि यह निष्पादन योग्य नहीं है, प्रतिवादी 1 से 3 द्वारा सी.पी.सी. की धारा 47 के अंतर्गत उठाई जा सकती है।

हेडनोट्स

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – सपठित नियम 5, 10 आदेश VIII और धारा 47 – प्रतिवादी 1 से 3 ने अपीलकर्ता-वादी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष दायर निष्पादन आवेदन में सीपीसी की धारा 47 के तहत आपत्ति दर्ज की थी- इसमें प्रस्तुत मामले के आधार पर यह तर्क दिया गया कि निष्पादन हेतु दिया गया आदेश निष्पादन योग्य नहीं था- निष्पादन न्यायालय ने आपत्तियों को स्वीकार कर लिया और निष्पादन आवेदन खारिज कर दिया गया- हालाँकि, पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय को आदेश के निष्पादन के लिए आगे बढ़ने का निर्देश दिया- प्रतिवादी 1 से 3 ने पुनरीक्षण आदेश के विरुद्ध अनुच्छेद 227 के तहत आवेदन दायर किया- उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया और पक्षकारों को मुकदमे की संपत्ति के संबंध में उनके अधिकारों का उचित फोरम द्वारा निर्णय कराने का विकल्प दिया- औचित्य:

अवधारित किया गया: अपीलकर्ता-वादी ने तीन प्रतिवादियों-K (प्रतिवादी संख्या 1), K के बेटे S (प्रतिवादी संख्या 2) और R (प्रतिवादी संख्या 3) के खिलाफ एक सिविल मुकदमा शुरू किया था - K ने दिनांक 05.12.1990 को अपना लिखित बयान दर्ज किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 331 के तहत मुकदमा वर्जित है- अन्य दो प्रतिवादियों द्वारा कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया गया था - अपीलकर्ताओं ने S (प्रतिवादी संख्या 2) के खिलाफ निर्णय सुनाने के लिए सीपीसी के आदेश VIII की धारा 5, 10 के तहत एक आवेदन दायर किया और उसे अनुमति दे दी गई- K का निधन हो गया और उसके खिलाफ मुकदमा समाप्त हो जाने के कारण खारिज कर दिया गया - वर्तमान मामले में, यह माना जाता है कि ट्रायल कोर्ट को इस तथ्य की जानकारी थी कि के का लिखित बयान रिकॉर्ड पर था अन्यथा उसने 'मुद्दों' को निस्तारित करने के लिए अगली तारीख तय नहीं की होती। ऐसी स्थिति में जहां मुकदमे की स्वीकार्यता प्रश्नगत थी और S द्वारा अपना लिखित बयान दाखिल न किए जाने के बावजूद, यह ऐसा मामला नहीं था जहां ट्रायल कोर्ट बिना यह संतुष्टि दर्ज किए कि उसके पास मुकदमे

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

की सुनवाई करने और विवादास्पद मुद्दे पर निर्णय देने का क्षेत्राधिकार है, केवल फैसला सुना सकता था, और वादपत्र में दिए गए कथनों को स्वीकार करते हुए एक भी कारण बताए बिना S के खिलाफ फैसला सुनाने की बात तो दूर की बात थी- उच्च न्यायालय ने सही टिप्पणी की कि S के खिलाफ निर्णय सुनाए जाने पर भी, K के खिलाफ *लिस* बनी रही और स्थिरता के संबंध में आपत्ति पर निर्णय के परिणामस्वरूप विपरीत निर्णय हो सकता था- वर्तमान मामले में, K द्वारा लिखित बयान दाखिल करके शिकायत में किए गए कथनों को नकारना उचित था, क्योंकि अपीलकर्ताओं के दावों को मौखिक और/या दस्तावेजी साक्ष्यों के माध्यम से साबित किया जाना चाहिए, न कि प्रतिवादियों में से किसी एक के खिलाफ बहुत ही लापरवाही से मुकदमा चलाने का आदेश दिया जाना चाहिए- जहां तक प्रतिवादी 1 से 3 को सी.पी.सी. की धारा 47 के तहत उपलब्ध आपत्ति का संबंध है, यह कानून की स्थापित स्थिति है कि निष्पादन न्यायालय की शक्तियां, हालांकि अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय की तुलना में संकीर्ण हैं, निष्पादन आवेदन को खारिज करने के लिए प्रयोग की जा सकती हैं, यदि निष्पादन के लिए रखा गया आदेश स्पष्ट रूप से न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी से ग्रस्त पाया जाता है, जिसने इसे कानून की नजर में अमान्य बना दिया है- निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय का यह निर्णय सही था कि प्रतिवादी 1 से 3 द्वारा डिक्री की निष्पादनीयता के संबंध में उठाई गई आपत्ति उचित थी- इसके अलावा, किसी विवाद पर निर्णय लेने की अपनी क्षमता पर पहले निर्णय लिए बिना वादी के पक्ष में किसी विवाद के गुण-दोष के आधार पर न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय, अधिकार क्षेत्र की अवैध और गलत धारणा पर आधारित निर्णय माना जाएगा, और इस प्रकार, अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की कमी के कारण इसे आक्षेपनीय माना जाएगा और कानून की नजर में इसे अमान्य माना जाएगा; तार्किक परिणाम के रूप में, दिनांक 05.08.1991 का आदेश प्रारम्भ से ही शून्य माना जाता है तथा उसके आधार पर तैयार किया गया आदेश निष्पादन योग्य नहीं है- इसके अलावा, दिनांक 05.08.1991 के आदेश में किसी भी विवादित मामले के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों के निर्धारण हेतु कोई निर्णय नहीं दिया गया है, और इसलिए, अब तक तैयार की गई डिक्री न्यायनिर्णय/निर्धारण की औपचारिक अभिव्यक्ति नहीं है क्योंकि ऐसा कोई न्यायनिर्णय/निर्धारण नहीं किया गया है जो सीपीसी की धारा 2(2) के अर्थ के भीतर डिक्री की आवश्यकताओं के अनुरूप हो- इसलिए, ट्रायल कोर्ट को सीपीसी की नियम 10 आदेश VIII के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए S के खिलाफ मुकदमा चलाने का कोई अधिकार नहीं था- उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। [पैरा 6, 20, 29, 41, 50, 52]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – नियम 10 आदेश VIII – शक्ति का दायरा और सीमा – चर्चा की गई। [पैरा 13, 14, 15, 16, 17]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – सपठित नियम 5, 10 आदेश VIII – जब प्रतिवादी लिखित बयान दाखिल करने में चूक करता है – वादी को क्या चाहिए:

अवधारित किया गया: किसी मामले में, प्रतिवादी लिखित बयान दाखिल करने में चूक करता है और पहला विकल्प ही अपनाया जाने वाला एकमात्र रास्ता है (प्रतिवादी के खिलाफ फैसला सुनाना), तो यह वादी को अदालत की संतुष्टि के लिए अपना मामला साबित करने के दायित्व से पूरी तरह मुक्त करने के समान होगा- सामान्यतः, अपने पक्ष में निर्णय पाने के लिए वादी से यह अपेक्षित होता है कि वह साक्ष्य प्रस्तुत करके अपने मामले को सिद्ध करे- वास्तव में नियम 10 को आदेश VIII के नियम 5 के साथ पढ़ा जाना चाहिए और स्थिति स्पष्ट प्रतीत होती है कि एक ट्रायल कोर्ट, अपने विवेक पर, किसी भी तथ्य को, जिसे स्वीकार किया गया है,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

ऐसी स्वीकृति के अलावा किसी अन्य तरीके से साबित करने की आवश्यकता हो सकती है- चूंकि वादपत्र में तथ्यों का अभिवचन करना आवश्यक होता है, न कि साक्ष्य का, जिसे गवाहों की जांच के दौरान प्रस्तुत किया जा सकता है, इसलिए प्रतिवादी द्वारा वादपत्र में अभिवचन किए गए तथ्यों का खंडन करते हुए लिखित बयान दाखिल करने में विफलता या उपेक्षा, सभी मामलों में, उसे अपने पक्ष में निर्णय का हकदार नहीं बना सकती, जब तक कि वह साक्ष्य प्रस्तुत करके अपने मामले/दावे को साबित नहीं कर देता। [पैरा 18]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – क्षेत्राधिकार – संक्षिप्त रूप:

अवधारित किया गया: सार यह है कि न्यायालय को न केवल दावे पर विचार करने और उस पर विचार करने के लिए विवाद के विषय-वस्तु के संबंध में अधिकारिता होनी चाहिए, बल्कि मांगी गई राहत प्रदान करने का अधिकारिता भी होनी चाहिए- एक बार जब यह मान लिया जाता है कि दोनों मामलों में अधिकार क्षेत्र उपलब्ध है, तो यह महत्वहीन है कि अधिकार क्षेत्र का प्रयोग गलत तरीके से किया गया हो- किसी त्रुटिपूर्ण निर्णय को 'अधिकार क्षेत्र के बिना' पारित किया गया निर्णय नहीं कहा जा सकता- इसलिए, यह आवश्यक है कि अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के अभाव वाले निर्णय और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में की गई त्रुटि से ग्रस्त निर्णय के बीच अंतर को ध्यान में रखा जाए। [पैरा 35]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – क्षेत्राधिकार – सिविल न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रश्न का निर्धारण:

अवधारित किया गया: अधिकारिता से आशय सिविल न्यायालय को यह जांच करने का अधिकार है कि क्या वादी ने उसके समक्ष मामला विधि द्वारा निर्धारित तरीके से लाया है और क्या दावा किए गए अनुतोष के लिए उसके द्वारा अच्छा मामला प्रस्तुत किया गया है। जब भी ऐसी पात्रता स्थापित हो जाती है, तो निर्णय दिए जाने तक की कोई भी त्रुटि अधिकार क्षेत्र के भीतर की त्रुटि मानी जा सकती है- इस बात की जांच कि क्या सिविल न्यायालय किसी मुकदमे को ग्रहण करने और उस पर विचार करने का हकदार है, उसे सी.पी.सी. की धारा 9 तथा संबंधित अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए करनी होगी, जो आपत्तिकर्ता के अनुसार, मुकदमे पर रोक लगाते हैं- अधिकार क्षेत्र का प्रश्न जांच के आरंभ में ही निर्धारित किया जाना चाहिए, न कि जांच के समाप्त होने पर। [पैरा 38]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – क्षेत्राधिकार – उस स्तर पर क्षेत्राधिकार का प्रश्न जब कोई न्यायालय अंतरिम राहत देने के प्रश्न पर विचार करता है:

अवधारित किया गया: जहां सिविल न्यायालय के समक्ष किसी वाद में अंतरिम अनुतोष का दावा किया जाता है और ऐसे अनुतोष के अनुदान से प्रभावित होने वाला पक्षकार, या वाद का कोई अन्य पक्षकार, उसके पोषणीयता का प्रश्न उठाता है या यह कि वह कानून द्वारा वर्जित है और इस आधार पर यह भी तर्क करता है कि अंतरिम अनुतोष नहीं दिया जाना चाहिए, वहां, यदि किसी भी रूप में अनुतोष दिया जाता है, तो उसके पहले कम से कम प्रथम दृष्टया यह संतुष्टि हो जानी चाहिए कि वाद पोषणीय है या वह कानून द्वारा वर्जित नहीं है- किसी न्यायालय के लिए यह अनुचित होगा कि वह स्थिरता के प्रश्न पर प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने से परहेज करे, फिर भी, इस धारणा पर अस्थायी संरक्षण प्रदान करने के लिए आगे बढ़े कि स्थिरता के प्रश्न को आदेश XIV सीपीसी के नियम 2 के तहत प्रारंभिक मुद्दे के रूप में तय किया जाना है- यह शक्ति का अनुचित प्रयोग हो सकता है - यदि अंतरिम राहत के लिए आवेदन पर सुनवाई के चरण में न्यायालय की यह राय है कि वाद कानून द्वारा वर्जित है या अन्यथा अनुरक्षणीय नहीं है, तो वह लिखित बयान दाखिल होने के बाद प्रारंभिक मुद्दा तैयार किए बिना इसे

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

खारिज नहीं कर सकता है, लेकिन अंतरिम राहत देने से इनकार करने के लिए निश्चित रूप से ऐसी राय दे सकता है— तथापि, यदि कोई असाधारण स्थिति उत्पन्न होती है, जहां मुकदमे की स्वीकार्यता के बिन्दु पर निर्णय लेने में समय लग सकता है और ऐसे निर्णय के लंबित रहने तक अस्थायी संरक्षण प्रदान न करने से अपरिवर्तनीय परिणाम हो सकते हैं, तो न्यायालय अपने द्वारा अपनाई गई कार्यवाही को उचित ठहराते हुए उचित आदेश जारी कर सकता है— दूसरे शब्दों में, यदि आवश्यक हो तो ऐसा आदेश पारित किया जा सकता है, ताकि राहत का दावा करने वाले पक्ष को अपूरणीय क्षति या चोट या अनुचित कठिनाई से बचाया जा सके और/या यह सुनिश्चित किया जा सके कि अदालत द्वारा हस्तक्षेप न करने के कारण कार्यवाही निष्फल न हो जाए। [पैरा 39]

निर्णय/आदेश – का प्रमुख सिद्धांत:

अवधारित किया गया: न्याय प्रदान करने की प्रणाली के प्रमुख सिद्धांतों में से यह एक है कि निर्णय/आदेश के रूप में किसी सक्षम न्यायिक मंच का कोई भी फैसला, जो कार्यवाही में पक्षों के अधिकारों और दायित्वों को निर्धारित करता है, पक्षों को सूचित करना चाहिए कि परिणाम क्या है और क्यों एक पक्ष सफल हुआ है और दूसरा नहीं – 'क्यों' कारणों का गठन करता है और 'क्या' निष्कर्ष है— किसी अन्य बात के अलावा, निष्कर्ष के समर्थन में कारण(कारणों) की आवश्यकता पर जोर देना निर्णायक द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर विवेक के प्रयोग की गारंटी देता है, साथ ही असफल पक्ष को उच्चतर न्यायालय के समक्ष कारणों का परीक्षण करने का अवसर भी प्रदान करता है— देश की सभी सिविल अदालतों को अपने न्यायिक कार्य को सी.पी.सी. के प्रावधानों के अनुसार विनियमित करना होगा— ऐसे प्रावधानों का कोई भी घोर उल्लंघन, अधिकार-क्षेत्र से बाहर माना जाएगा। [पैरा 47, 48]

केस कानून का संदर्भ दिया गया

बलराज तनेजा बनाम सुनील मदान, [1999] 2 सप्ल. एससीआर 258: (1999) 8 एससीसी 396; *वासुदेव धनजीभाई मोदी बनाम राजाभाई अब्दुल रहमान*, [1971] 1 एससीआर 66: (1970) 1 एससीसी 670; *धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय*, [2001] 3 एससीआर 1129: (2001) 6 एससीसी 534; *आधिकारिक ट्रस्टी बनाम सचिन्द्र नाथ चटर्जी*, [1969] एससीआर 92: एआईआर 1969 एससी 823; *रफीक बीबी बनाम सैयद वलीउद्दीन*, [2003] 3 सप्ल. एससीआर 100: (2004) 1 एससीसी 287 – पर अवलम्ब लिया गया।

सुरजीत सिंह और अन्य बनाम हरबंस सिंह और अन्य, [1995] 3 सप्ल. एससीआर 354: (1995) 6 एससीसी 50; *मनोहर लाल बनाम उग्रसेन*, [2010] 7 एससीआर 346: (2010) 11 एससीसी 557; *हुकम चंद बनाम ओम चंद*, (2001) 10 एससीसी 715; *नागुबाई अम्मल बनाम बी. शमा राव*, [1956] एससीआर 451: एआईआर 1956 एससी 593; *स्वर्ण लता घोष बनाम एच.के. बनर्जी*, [1969] 3 एससीआर 976: (1969) 1 एससीसी 709; *बलवंत एन. विश्वामित्र बनाम यादव सदाशिव मुले*, [2004] 3 सप्ल. एससीआर 519 : (2004) 8 एससीसी 706 – संदर्भित।

हृदय नाथ रॉय बनाम रामचंद्र बरना सरमा, 1920 एससीसी ऑनलाइन कैल 85: आईएलआर LXVIII, कैल 138 – संदर्भित।

उद्धृत पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ

माननीय मुख्य न्यायाधीश पी.बी. मुखर्जी, द न्यू ज्यूरिसप्रुडेंस:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

द ग्रामर ऑफ मॉडर्न लॉ – संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908; उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950

कीवर्ड की सूची

क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि; क्षेत्राधिकार का सार; क्षेत्राधिकार का प्रश्न; अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र में कमी; निर्णय का प्रमुख सिद्धांत; निष्पादन न्यायालय की शक्तियाँ; डिक्री के निष्पादन के विरुद्ध आपत्ति; डिक्री की निष्पादन क्षमता; निष्पाद्य डिक्री; डिक्री की आवश्यकताएँ.

से उत्पन्न मामला

सिविल अपील्य क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 9695/2013

सीएमडब्ल्यूपी संख्या 15236/2009 में उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के निर्णय और आदेश दिनांक 04.02.2011 से।

पक्षकारों के लिए उपस्थिति

अपीलकर्ताओं के लिए सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता, राहुल नारायण, शाश्वत गोयल, विशाल कुमार कौशिक, अधिवक्तागण।

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्तागण सुश्री प्रीतिका द्विवेदी, अभिषेक चौधरी, आदर्श उपाध्याय।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्यायमूर्ति दीपांकर दत्ता

चुनौती

1. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 ने अपीलकर्ताओं द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष दायर एक निष्पादन आवेदन में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (एतस्मिनपश्चात 'सीपीसी') की धारा 47 के तहत आपत्ति दर्ज की थी। इसमें प्रस्तुत मामले के आधार पर यह तर्क दिया गया कि निष्पादन हेतु प्रस्तुत किया गया आदेश निष्पादन योग्य नहीं था। दिनांक 19 मार्च, 2008 को निष्पादन न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की आपत्तियों को स्वीकार कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप निष्पादन आवेदन खारिज कर दिया गया।

2. अपीलकर्ताओं द्वारा दिनांक 19 मार्च, 2008 के आदेश पर पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया, जिसने अपने आदेश दिनांक 21 फरवरी, 2009 के तहत प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 द्वारा दायर आपत्ति को खारिज कर दिया तथा निष्पादन न्यायालय को निर्देश दिया कि वह ऐसी आपत्ति को गैर-धारणीय मानते हुए डिक्री के निष्पादन के लिए आगे बढ़े।

3. दिनांक 21 फरवरी, 2009 के पुनरीक्षण आदेश को प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 227¹ के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय (एतस्मिनपश्चात उच्च न्यायालय) के समक्ष एक आवेदन में चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने दिनांक 4 फरवरी, 2011 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित

¹¹ सिविल मिसलेनियस रिट याचिका संख्या 15236/2009

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

आदेश को निरस्त कर दिया तथा पक्षकारों को वाद संपत्ति के संबंध में अपने अधिकारों का उचित फोरम द्वारा न्यायनिर्णयन कराने का विकल्प प्रदान किया।

4. यह अपील विशेष अनुमति द्वारा उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय एवं आदेश को चुनौती देती है।

तथ्यात्मक अवलोकन

5. निष्पादन के चरण में उठाए गए विवाद की प्रकृति और सीमा को ध्यान में रखते हुए, इस अपील पर निर्णय लेने के लिए इसे शुरू करने वाले तथ्यों और प्रतिद्वंद्वी विवादों को बहुत गहराई से नोट करना आवश्यक नहीं है; हालाँकि, हम अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत आवश्यक तथ्यों और प्रस्तुतियों को संक्षेप में बताने का प्रस्ताव करते हैं।

6. अनावश्यक विवरणों को छोड़कर, प्रासंगिक तथ्यों पर नीचे ध्यान दिया गया है:

a. अपीलकर्ताओं ने दावा किया कि उनकी परदादी, खातून जन्नत बीबी ने दिनांक 16 अगस्त, 1988 को मौखिक रूप से उन्हें एक निश्चित संपत्ति (एतस्मिनपश्चात "वाद संपत्ति") उपहार में दी थी, जिसके बाद संबंधित तहसीलदार के समक्ष उसी का रिकॉर्ड रखने वाला एक ज्ञापन भी निष्पादित किया गया था और वे लगातार उस पर शांतिपूर्ण कब्जे में थे।

b. अपीलकर्ताओं ने, वादी के रूप में, अपने पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से, विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 (एतस्मिनपश्चात "विशिष्ट राहत अधिनियम") की धारा 38 के तहत तीन प्रत्यर्थियों – खातून जन्नत बीबी के बेटे असद उल्लाह काजमी [प्रत्यर्थी सं. 1] (एतस्मिनपश्चात "काजमी"), काजमी के बेटे समीउल्लाह [प्रत्यर्थी सं. 2] और एक कथित देखभाल करने वाला, श्री राम चंद्र यादव [प्रत्यर्थी सं. 3] के खिलाफ मुकदमे की संपत्ति के संबंध में, जिसका विशेष रूप से शिकायत में वर्णन किया गया है, ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक सिविल वाद² (एतस्मिनपश्चात "मुकदमा") दायर किया। अपीलकर्ताओं ने तीनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध वादग्रस्त संपत्ति पर उनके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की।

c. काजमी ने वर्ष 1990 में किसी समय उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (एतस्मिनपश्चात यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम) की धारा 229 बी के तहत उप-विभागीय अधिकारी के समक्ष अधिकारों की घोषणा के लिए कार्यवाही शुरू की; हालाँकि, उक्त कार्यवाही दिनांक 27 फरवरी, 1999 [उनकी मृत्यु के 4 (चार) साल बाद] खारिज कर दी गई थी।

d. इस मुकदमे में अपीलकर्ताओं द्वारा अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए आवेदन दायर किया गया था। दिनांक 31 मई, 1990 को ट्रायल कोर्ट ने आवेदन स्वीकार कर लिया और काजमी तथा समीउल्लाह को विवादित संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया तथा अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने का निर्देश दिया।

e. काजमी ने 5 दिसंबर, 1990 को मुकदमे में अपना लिखित बयान दायर किया, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया कि मुकदमा यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 331 द्वारा वर्जित है और सिविल न्यायालय के समक्ष स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि मुकदमे की संपत्ति

²² मूल वाद संख्या 58/1990

भूमिधारी भूमि थी। आगे यह भी कहा गया कि मुकदमा विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41 (एच) के तहत वर्जित है; उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उनके पुत्र समीउल्लाह, प्रत्यर्थी संख्या 2 का मुकदमे की संपत्ति से तब तक कोई सरोकार नहीं था, जब तक उनके पिता (काजमी) जीवित थे और, इसलिए, समीउल्लाह को प्रत्यर्थी संख्या 2 के रूप में गलत तरीके से फंसाया गया है। काजमी ने इस बात से भी इनकार किया कि खातून जन्नत बीबी को कोई मौखिक उपहार देने का अधिकार था; चूँकि उस सम्पत्ति में उसका केवल आजीवन हित था, अतः उसकी मृत्यु के बाद, वह विशेष रूप से उसी के पास आ गयी।

f. गौरतलब है कि अन्य दो प्रत्यर्थियों की ओर से कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया गया था।

g. अपीलकर्ताओं द्वारा समीउल्लाह के खिलाफ निर्णय सुनाने के लिए सीपीसी के आदेश VIII के नियम 5 और 10 के तहत आवेदन प्रस्तुत करने पर, ट्रायल कोर्ट ने अपने दिनांक 5 अगस्त, 1991³ के आदेश द्वारा इसे अनुमति दे दी, जिस पर हम अपने विश्लेषण के दौरान विचार करने का प्रस्ताव करते हैं।

h. इसके बाद, दिनांक 10 अक्टूबर, 1991 को ट्रायल कोर्ट ने मुकदमे में विचार के लिए 11 (ग्यारह) मुद्दे तय किए, जिनमें से सबसे पहला मुद्दा मुकदमे की सुनवाई करने की उसकी क्षमता पर था।

i. काजमी का निधन दिनांक 15 जुलाई, 1995 को हो गया, जिसके बाद उनके बेटों समीउल्लाह और फरीदुद्दीन [प्रत्यर्थी 4 और 5] ने दिनांक 3 नवंबर, 1997 की बिक्री विलेख के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति प्रत्यर्थी 1 से 3 (एतस्मिन्पश्चात् "क्रेता") को हस्तांतरित कर दी। काजमी के विरुद्ध मुकदमा उनकी मृत्यु के बाद भी लंबित रहा, तथा उनके किसी अन्य उत्तराधिकारी या विधिक प्रतिनिधि को प्रत्यर्थी के रूप में रिकार्ड में नहीं लाया गया। काजमी के विरुद्ध मुकदमा अंततः 27 अप्रैल, 2009 को खारिज कर दिया गया।

j. अपीलकर्ताओं ने, कथित डिक्री धारकों के रूप में, दिनांक 16 दिसंबर, 1997 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन आवेदन⁴ दायर किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि प्रत्यर्थी 4 और 5 को दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश का उल्लंघन करने के लिए दंडित किया जाए और क्रेताओं के पक्ष में 3 नवंबर, 1997 की बिक्री विलेख को अवैध घोषित किया जाए।

k. दिनांक 16 जनवरी, 1998 को पारित अंतरिम आदेश के तहत निष्पादन न्यायालय ने क्रेताओं को वादग्रस्त संपत्ति में किसी भी तरह से हस्तक्षेप करने से रोक दिया।

l. इसके बाद, क्रेताओं ने सी.पी.सी. की धारा 47 के तहत अपनी आपत्ति दर्ज की, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि दिनांक 5 अगस्त, 1991 का आदेश न तो निर्णय था और न ही डिक्री था और इसे निष्पादित नहीं किया जा सकता था।

m. इसके अलावा, दिनांक 7 दिसंबर, 2004 को अपीलकर्ताओं ने प्रत्यर्थियों के खिलाफ अवमानना याचिका⁵ दायर की, जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ताओं के वादग्रस्त संपत्ति पर

³ इस डिक्री पर दिनांक 11 नवम्बर, 1991 को हस्ताक्षर किये गये।

⁴ निष्पादन आवेदन संख्या 58/1997

⁵ सिविल मिसलेनियस कन्टेम्प्ट याचिका संख्या 62/2004

कब्जे में हस्तक्षेप करके दिनांक 31 मई, 1990 और 5 अगस्त 1991 के आदेशों और 16 जनवरी, 1998 के निष्पादन न्यायालय के आदेश की अवमानना की गई है।

n. इन घटनाओं के बाद उपरोक्त पैराग्राफ 1 से 4 में उल्लिखित कार्यवाहियां और निर्णय/आदेश पारित किए गए।

आक्षेपित आदेश

7. क्रेताओं ने पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 21 फरवरी, 2009 को चुनौती देकर उच्च न्यायालय के उपयुक्त क्षेत्राधिकार का आह्वान किया। उच्च न्यायालय ने निर्धारण के लिए दो बिंदु तैयार किए, अर्थात् (i) क्या उसके समक्ष याचिकाकर्ताओं (प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3), जो वादग्रस्त संपत्ति के बाद के खरीदार हैं, को डिक्री के निष्पादन के खिलाफ सीपीसी की धारा 47 के तहत आपत्ति बनाए रखने का कोई अधिकार था? और (ii) क्या दिनांक 5 अगस्त, 1991 को पारित आदेश, जो सीपीसी के आदेश VIII के नियम 10 के तहत शक्ति के कथित प्रयोग में पारित किया गया था, जिसमें अकेले समीउल्लाह के खिलाफ मुकदमा चलाने का आदेश दिया गया था, वह अधिकार क्षेत्र से बाहर है और एक अमान्यता है जो प्रकृति में अनिर्धारित और निष्पादन योग्य नहीं है? उच्च न्यायालय ने एक सहायक बिन्दु यह भी निर्धारित किया कि क्या क्रेता के पक्ष में समीउल्लाह द्वारा दिनांक 23 नवम्बर, 1997 को किया गया विक्रय विलेख अमान्य था।

8. जबकि दो मुख्य बिंदुओं का उत्तर सकारात्मक था, सहायक बिंदु का उत्तर नकारात्मक था। अपना निर्णय सुनाते हुए उच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 5 अगस्त, 1991 तथा उसके फलस्वरूप उसके आधार पर जारी डिक्री को अधिकार क्षेत्र से बाहर तथा अमान्य करार दिया। उच्च न्यायालय का यह भी मत था कि 21 फरवरी, 2009 का पुनरीक्षण आदेश निरस्त किया जाना चाहिए तथा रिट याचिका स्वीकार की जानी चाहिए, जिस पर न्यायालय ने विधिवत आदेश दिया। पक्षकारों को विवादित संपत्ति के स्वामित्व के निर्धारण के लिए उपलब्ध कानूनी उपायों का सहारा लेने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। उच्च न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय में की गई कुछ प्रमुख टिप्पणियों को सुविधा के लिए नीचे संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

a. मुकदमे में ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दिनांक 5 अगस्त 1991 के आदेश में केवल प्रत्यर्थी संख्या 2 को मुकदमे की संपत्ति से संबंधित अपीलकर्ताओं के अधिकारों के शांतिपूर्ण उपयोग में हस्तक्षेप करने से रोका गया, लेकिन काजमी के बेटों को उससे निपटने या उसे हस्तांतरित करने से प्रतिबंधित नहीं किया गया।

b. वादग्रस्त संपत्ति का हस्तांतरण संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (एतस्मिनपश्चात् टीओपी अधिनियम) की धारा 52 के उल्लंघन में नहीं था और क्रेता अपीलकर्ताओं के निष्पादन आवेदन पर आपत्ति कर सकते थे।

c. यह एक प्रमुख सिद्धांत है कि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए किसी मुकदमे में सफल होने के लिए, वादी को या तो विवादित संपत्ति पर स्वामित्व, मालिकाना अधिकार स्थापित करना होगा या उस पर कब्जा साबित करना होगा; हालांकि, ट्रायल कोर्ट ने वादी के स्वामित्व को नहीं पाया था या विवादित संपत्ति के संबंध में उनके कब्जे को साबित नहीं किया था।

d. न्यायालय को हमेशा शिकायत के तथ्यों या लिखित बयान दाखिल न करने या विशिष्ट इनकार के अभाव के कारण स्वीकार किए गए तथ्यों पर निर्णय सुनाने की आवश्यकता नहीं होती है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

न्यायालय के पास केवल उन मामलों में निर्णय सुनाने का विकल्प होता है जहाँ वह इसे विवेकपूर्ण समझता है; उसके पास ऐसा उचित आदेश पारित करने का विकल्प भी होता है जो उसे उचित लगे।

e. सी.पी.सी. के आदेश VIII के नियम 1, 5 और 10 को पढ़ने से पता चलता है कि वे किसी मुकदमे में केवल एक ही प्रत्यर्थी से संबंधित हैं, कई प्रत्यर्थियों से नहीं। इसके बजाय, ट्रायल कोर्ट सीपीसी के आदेश IX के नियम 11 के तहत मुकदमे की एकपक्षीय सुनवाई कर सकता था क्योंकि काज़मी का लिखित बयान रिकॉर्ड पर था। इसलिए, ट्रायल कोर्ट को विवाद पर निर्णय लिए बिना एक प्रत्यर्थी के खिलाफ मुकदमा चलाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था।

f. दिनांक 5 अगस्त, 1991 का आदेश धारा 2(9) के दायरे में आने वाला निर्णय नहीं था, जिसे सीपीसी के आदेश XX के नियम 4(2) के साथ पढ़ा जाए और यह धारा 2(9) और 2(2), सीपीसी के अनुसार क्रमशः “निर्णय” और डिक्री की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता था।

प्रतिद्वंद्वी तर्क

9. अपीलकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा ने आक्षेपित निर्णय में हमारे हस्तक्षेप की मांग करते हुए निम्नानुरार तर्क प्रस्तुत किया:

a. उच्च न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान न देकर गलती कर बैठा कि निष्पादन न्यायालय ने दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश और उसके अनुसार तैयार की गई डिक्री के विरुद्ध जाकर अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, तथा यह निष्कर्ष दिया कि वह डिक्री निष्पादन योग्य नहीं थी।

b. समीउल्लाह को अपना लिखित बयान दर्ज कराने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, लेकिन वह ऐसा करने में असफल रहे। किसी भी स्थिति में, 5 अगस्त, 1991 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी, तथा वह अंतिम हो गया था।

c. ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 31 मई, 1990 के अंतरिम आदेश के तहत काज़मी और समीउल्लाह को यथास्थिति बनाए रखने और अपीलकर्ताओं द्वारा विवादित संपत्ति पर शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने का निर्देश दिया था। उच्च न्यायालय ने गलती से यह अवधारित किया था कि उपर्युक्त आदेश के अवलोकन से यह पता नहीं चलता कि पक्षकारों पर वादग्रस्त संपत्ति को हस्तांतरित करने से रोकने के लिए कोई प्रतिबंध लगाया गया है, तथा 3 नवम्बर, 1997 का विक्रय विलेख वैध रूप से दर्ज किया गया था।

d. क्रेता वादकालीन क्रेता थे और वे ट्रायल कोर्ट की अनुमति के बिना मुकदमे की संपत्ति नहीं खरीद सकते थे। **सुरजीत सिंह एवं अन्य बनाम हरबंस सिंह एवं अन्य**⁶ तथा **मनोहर लाल बनाम उग्रसेन**⁷ के निर्णयों का सन्दर्भ इस तर्क के समर्थन में दिया गया कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान तथा अंतरिम निषेधाज्ञा के उल्लंघन में संपत्ति का हस्तांतरण अनुचित है।

e. इसके अलावा, क्रेताओं ने निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित 16 जनवरी, 1998 के निषेधाज्ञा आदेश का घोर उल्लंघन करते हुए 10 अक्टूबर, 2004 को अपीलकर्ताओं को वाद संपत्ति के उनके शांतिपूर्ण कब्जे से जबरन बेदखल कर दिया।

⁶ (1995) 6 एससीसी 50

⁷ (2010) 11 एससीसी 557

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

f. **बलराज तनेजा बनाम सुनील मदान**⁸ पर उच्च न्यायालय द्वारा अवलम्ब लिया जाना वर्तमान मामले में अनुचित था, क्योंकि इस न्यायालय ने **बलराज तनेजा (उपरोक्त)** में यह निर्णय दिया था कि सीपीसी के आदेश VIII के नियम 10 के अंतर्गत वाद पर डिक्री करते समय कारण अवश्य दिए जाने चाहिए, तथा वह ऐसे मामले में उलझा हुआ था, जहां डिक्री को अपील्य कार्यवाही में चुनौती दी गई थी। वर्तमान मामले में, डिक्री को निष्पादन कार्यवाही में निष्पादन योग्य घोषित करने की मांग की गई थी, जो कि इस तरह के संकीर्ण क्षेत्राधिकार की पहुंच से बहुत परे है।

10. क्रेता (प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3) के विद्वान अधिवक्ता सुश्री प्रीतिका द्विवेदी ने आक्षेपित निर्णय को बरकरार रखने के समर्थन में निम्नानुसार तर्क प्रस्तुत किया:

a. ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दिनांक 5 अगस्त, 1991 का आदेश धारा 2(9) के दायरे में आने वाला निर्णय नहीं है, साथ ही सीपीसी के आदेश XX के नियम 4 के अंतर्गत भी नहीं आता है और **बलराज तनेजा (उपरोक्त)** में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत को उच्च न्यायालय द्वारा सही रूप से लागू किया गया था।

b. उच्च न्यायालय ने सभी पक्षों को उचित फोरम द्वारा विवादित संपत्ति के स्वामित्व का निर्णय कराने की स्वतंत्रता प्रदान की थी; इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ताओं के साथ किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह था। इसके अलावा, क्रेता के पक्ष में बिक्री विलेख के स्वामित्व और वैधता से संबंधित किसी भी प्रश्न का निर्णय उचित फोरम द्वारा किया जा सकता है।

c. खरीद के समय, काजमी के बेटों, यानी प्रत्यर्थी 4 और 5 के नाम, मुकदमे की संपत्ति से संबंधित भूमि राजस्व रिकॉर्ड में मौजूद थे, जिसके बाद खरीदारों के नाम दाखिल खारिज के माध्यम से डाले गए हैं।

d. **हुकम चंद बनाम ओम चंद**⁹ और **नागुबाई अम्मल बनाम बी शमा राव**¹⁰ में निर्धारित कानून के अनुसार, मुकदमे की संपत्ति का हस्तांतरण टीओपी अधिनियम की धारा 52 का उल्लंघन नहीं था, क्योंकि कानून में ऐसी वादकालीन संपत्ति के हस्तांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया गया था।

विश्लेषण

11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों को सुना है और आक्षेपित निर्णय के साथ-साथ रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सामग्रियों का अवलोकन किया है।

12. इस अपील में निर्णय के लिए कानून का एकमात्र प्रश्न यह है:

क्या दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश में इतनी गंभीर क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि थी कि तत्पश्चात तैयार किया गया आदेश निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य नहीं है और प्रत्यर्थी 1 से 3 द्वारा सीपीसी की धारा 47 के अंतर्गत यह आपत्ति उठाई जा सकती थी कि यह आदेश निष्पादन योग्य नहीं है?

13. उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देने से पहले, हम सीपीसी के आदेश VIII के नियम 10 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति के दायरे और सीमा की जांच करना उचित समझते हैं।

⁸ (1999) 8 एससीसी 396

⁹ (2001) 10 एससीसी 715

¹⁰ 10 एआईआर 1956 एससी 593

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

14. सीपीसी के आदेश VIII के नियम 10 का इस्तेमाल ट्रायल कोर्ट द्वारा समीउल्लाह के खिलाफ 5 अगस्त, 1991 को आदेश पारित करने में शक्ति के प्राथमिक स्रोत के रूप में किया गया था, जिसमें उस प्रक्रिया को निर्धारित किया गया है जिसे तब अपनाया जा सकता है जब कोई पक्ष अदालत द्वारा मांगे जाने पर अपना लिखित बयान प्रस्तुत करने में विफल रहता है। नियम 10 इस प्रकार है:

“10. जब पक्षकार न्यायालय द्वारा मांगे गए लिखित कथन को प्रस्तुत करने में विफल रहता है, तो प्रक्रिया.-

जहां कोई पक्षकार, जिससे नियम 1 या नियम 9 के तहत लिखित कथन अपेक्षित है, न्यायालय द्वारा अनुमत या निर्धारित समय के भीतर उसे प्रस्तुत करने में विफल रहता है, जैसा भी मामला हो, तो न्यायालय उसके खिलाफ निर्णय सुनाएगा, या वाद के संबंध में ऐसा आदेश देगा जैसा वह ठीक समझे और ऐसे निर्णय की घोषणा पर डिक्री तैयार की जाएगी।”

15. हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि नियम 10 प्रकृति में अनुमोदक है, जो किसी मामले में ट्रायल कोर्ट को उसके लिए उपलब्ध दो विकल्पों में से किसी एक का प्रयोग करने में सक्षम बनाता है। निर्णय सुनाने के लिए कार्यवाही करने के विकल्प के बावजूद, न्यायालय के पास अभी भी निर्णय न सुनाने तथा उस मुकदमे के संबंध में आदेश देने का विकल्प है जिसे वह उचित समझता है। नियम 10 में क्रिया 'करेगा' [यद्यपि 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा क्रिया 'कर सकता है' के स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया है] पहले विकल्प को अनिवार्य प्रावधान का दर्जा नहीं देता है, इतना अधिक कि प्रत्येक मामले में जहां कोई पक्ष, जिससे लिखित बयान आमंत्रित किया गया है, उसे दाखिल करने में विफल रहता है, तो न्यायालय को उसके विरुद्ध निर्णय सुनाना होगा। यदि यही तात्पर्य होता, तो दूसरा विकल्प, जिस पर 'करेगा' समान रूप से लागू होता है, निरर्थक हो जाता।

16. इस स्तर पर, हम आदेश VIII के नियम 10 के दायरे की जांच करने के लिए **बलराज तनेजा (उपरोक्त)** पर एक त्वरित नज़र डालना उचित समझते हैं। इसमें, इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी न्यायालय को प्रत्यर्थी द्वारा लिखित बयान दाखिल करने में विफल रहने पर, केवल वादपत्र के आधार पर, सी.पी.सी. के आदेश VIII के नियम 10 का आह्वान करते हुए यांत्रिक निर्णय पारित नहीं करना चाहिए। सुविधा के लिए निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

“29. जैसा कि पहले बताया गया है, न्यायालय को प्रत्यर्थी द्वारा लिखित बयान में दिए गए तथ्य को स्वीकार करने पर आंख मूंदकर कार्य नहीं करना चाहिए, न ही न्यायालय को केवल इसलिए आंख मूंदकर निर्णय देना चाहिए क्योंकि प्रत्यर्थी ने न्यायालय में दायर वाद में वादी द्वारा बताए गए तथ्यों के आधार पर कोई लिखित बयान दायर नहीं किया है। किसी मामले में, विशेषकर जहां प्रत्यर्थी द्वारा लिखित बयान दाखिल नहीं किया गया है, न्यायालय को सीपीसी के आदेश 8 नियम 10 के तहत कार्यवाही करते समय थोड़ा सतर्क रहना चाहिए। प्रत्यर्थी के विरुद्ध निर्णय पारित करने से पूर्व उसे यह अवश्य देख लेना चाहिए कि यदि वादपत्र में दिए गए तथ्यों को स्वीकार कर लिया गया भी मान लिया जाए, तो भी वादपत्र में उल्लिखित किसी तथ्य को साबित किए बिना वादी के पक्ष में निर्णय पारित किया जा सकता है। यह न्यायालय की संतुष्टि का मामला है और इसलिए, केवल इस बात से संतुष्ट होने पर कि ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिसे मान्य स्वीकृति के आधार पर साबित करने की आवश्यकता है, न्यायालय

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

सुविधाजनक रूप से उस प्रत्यर्थी के विरुद्ध निर्णय पारित कर सकता है जिसने लिखित बयान दाखिल नहीं किया है। लेकिन यदि वादपत्र में ही यह संकेत दिया गया है कि मामले में तथ्य के विवादित प्रश्न सम्मिलित हैं, जिनके बारे में वादपत्र में ही दो भिन्न संस्करण दिए गए हैं, तो न्यायालय के लिए यह सुरक्षित नहीं होगा कि वह वादी से तथ्य साबित करने की अपेक्षा किए बिना निर्णय पारित कर दे, ताकि तथ्यात्मक विवाद का निपटारा हो सके। ऐसा मामला आदेश 8 के नियम 5 के उप-नियम (2) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'न्यायालय अपने विवेकानुसार किसी भी ऐसे तथ्य को साबित करने की अपेक्षा कर सकता है' अथवा आदेश 8 के नियम 10 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'वाद के संबंध में ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे' के अंतर्गत आएगा।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह निर्णय यह मानते हुए दिया गया था कि प्रावधान में प्रयुक्त क्रिया 'हो सकता है' है, लेकिन इससे कोई ठोस परिणाम नहीं निकलता है।

17. **बलराज तनेजा (उपरोक्त)** को पढ़ने से जो बात उभर कर आती है, जिससे हम पूरी तरह सहमत हैं, वह यह है कि केवल इस बात से संतुष्ट होने पर कि ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिसे मान्य स्वीकृति के आधार पर साबित करने की आवश्यकता है, अदालत प्रत्यर्थी के खिलाफ फैसला दे सकती है जिसने लिखित बयान दाखिल नहीं किया है; लेकिन यदि वादपत्र में ही तथ्य के विवादित प्रश्नों के शामिल होने का संकेत मिलता है, तो न्यायालय के लिए वादी से तथ्य साबित करने की अपेक्षा किए बिना निर्णय पारित करना सुरक्षित नहीं होगा। **बलराज तनेजा (उपरोक्त)** ने यह भी कानून बनाया है कि सी.पी.सी. के आदेश VIII, नियम 10 का प्रावधान किसी भी तरह से अनिवार्य नहीं है, इस अर्थ में कि यदि प्रत्यर्थी अपना लिखित बयान दाखिल करने में विफल रहता है या उपेक्षा करता है, तो अदालत के पास वादी के पक्ष में निर्णय पारित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

18. यदि वास्तव में, किसी मामले में, प्रत्यर्थी लिखित बयान दाखिल करने में चूक करता है और पहला विकल्प ही अपनाया जाने वाला एकमात्र रास्ता है, तो यह वादी को न्यायालय की संतुष्टि के लिए अपना मामला साबित करने के दायित्व से पूरी तरह मुक्त करने के समान होगा। आम तौर पर, अपने पक्ष में निर्णय पाने के लिए, वादी से यह अपेक्षित होता है कि वह साक्ष्य प्रस्तुत करके अपने तर्क को सिद्ध करे। वास्तव में, नियम 10 को आदेश VIII के नियम 5 के साथ पढ़ा जाना चाहिए और स्थिति स्पष्ट प्रतीत होती है कि एक ट्रायल कोर्ट, अपने विवेक से, किसी भी तथ्य को, जिसे स्वीकार किया गया माना जाता है, ऐसी स्वीकृति के अलावा किसी अन्य तरीके से साबित करने की आवश्यकता कर सकता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58 के संबंध में भी स्थिति ऐसी ही है। यह याद रखना चाहिए कि किसी मुकदमे में वादपत्र रिट याचिका के समान नहीं होता है, जहां न केवल तथ्यों का अभिवचन किया जाता है, बल्कि अभिवचन किए गए तथ्यों के समर्थन में साक्ष्य भी संलग्न किए जाते हैं, जिसके बाद हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद ऐसी याचिका पर हलफनामा साक्ष्य के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है। चूंकि वादपत्र में तथ्यों का अभिवचन करना आवश्यक होता है, न कि साक्ष्य का, जिसे गवाहों की जांच के दौरान प्रस्तुत किया जा सकता है, इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा वादपत्र में अभिवचन किए गए तथ्यों का खंडन करते हुए लिखित बयान दाखिल करने में विफलता या उपेक्षा, सभी मामलों में, उसे अपने पक्ष में निर्णय का हकदार नहीं बना सकती, जब तक कि वह साक्ष्य प्रस्तुत करके अपने मामले/दावे को साबित नहीं कर देता।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

19. आदेश VIII के नियम 10 में जो प्रावधान है, उसे ध्यान में रखते हुए अब दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश की जांच की जा सकती है, क्योंकि यह हमारे समक्ष वर्तमान मुकदमे की उत्पत्ति है। दिनांक 5 अगस्त, 1991 को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिया गया आदेश इस प्रकार है:

“68-सी आवेदन वादी द्वारा सीपीसी के आदेश-8 नियम-5 (2) और (3) के साथ नियम 10 के तहत प्रस्तुत किया गया। वादी, समीउल्लाह पुत्र असद उल्लाह काज़मी के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रत्यर्थी संख्या 1 (प्रत्यर्थी संख्या 2) के रूप में अभियुक्त बनाया गया है, क्योंकि वह भी विवादित संपत्ति में वादी के अधिकार का अतिक्रमण करने की धमकी दे रहा था। वह अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुए और आवेदन प्रस्तुत किया तथा हलफनामे 50-सी और 57-सी भी दाखिल किए, लेकिन वह कोई लिखित बयान दाखिल करने में असफल रहे। यह स्पष्ट है कि लिखित बयान के लिए कई तारीखें दी गई हैं और अंतिम तारीख 29.4.91 थी, जो लिखित बयान और मुद्दों के लिए तय की गई थी, लेकिन प्रत्यर्थी ने लिखित बयान दाखिल नहीं किया है और इस आधार पर वादी ने उपरोक्त आवेदन 68-सी प्रस्तुत किया है।

वादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वह अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुए हैं तथा उन्हें लिखित बयान दाखिल करने के लिए पर्याप्त समय दिया गया है, लेकिन वे लिखित बयान दाखिल करने में विफल रहे। यह मामला सीपीसी के आदेश-8 नियम 10 के अंतर्गत आता है। प्रत्यर्थी संख्या 2 अनुपस्थित रहा। उपरोक्त के मद्देनजर, मेरी राय है कि यह सीपीसी के आदेश-8 नियम 10 के तहत आगे बढ़ने के लिए उपयुक्त मामला है।

तदनुसार, वादीगण का वाद प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध सीपीसी के आदेश-8 नियम 10 के अंतर्गत लागत सहित स्वीकृत किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 2 को विवादित भवन, वृक्षों और अन्य संपत्तियों के संबंध में वादी के शांतिपूर्ण अधिकार और आनंद में हस्तक्षेप न करने के लिए पाबंद किया गया है।

मुद्दों के लिए दिनांक 9.9.1991 का दिनांक तय करें।”

20. वर्तमान मामले में, काज़मी ने अपीलकर्ताओं की शिकायत से संबंधित अपना लिखित बयान 5 अगस्त, 1991 के आदेश से पहले ही दायर कर दिया था। वहां, काज़मी ने न केवल शिकायत में किए गए दावों का खंडन किया था, बल्कि उन्होंने ऊपर उल्लिखित आधार पर ट्रायल कोर्ट के समक्ष मुकदमे की स्वीकार्यता पर भी विशेष रूप से आपत्ति जताई थी। माना जा रहा है कि ट्रायल कोर्ट को इस तथ्य की जानकारी थी कि काज़मी का लिखित बयान रिकॉर्ड में था, अन्यथा उसने ‘मुद्दों’ को तय करने के लिए अगली तारीख तय नहीं की होती। ऐसी स्थिति में, जहां मुकदमे की स्वीकार्यता प्रश्नगत थी और समीउल्लाह द्वारा अपना लिखित बयान दाखिल न किए जाने के बावजूद, यह ऐसा मामला नहीं था, जहां ट्रायल कोर्ट बिना यह संतुष्टि दर्ज किए कि उसे मुकदमे की सुनवाई करने और विवादास्पद मुद्दे पर निर्णय देने का क्षेत्राधिकार है, केवल निर्णय सुना सकता था, और बिना एक भी कारण बताए, वादपत्र में दिए गए कथनों को स्वीकार किए बिना समीउल्लाह के खिलाफ निर्णय सुनाने की तो बात ही छोड़िए। उच्च न्यायालय ने सही टिप्पणी की कि समीउल्लाह के खिलाफ निर्णय सुनाए जाने पर भी, काज़मी के खिलाफ लिस जीवित रही और विचारणीयता के संबंध में आपत्ति पर निर्णय के परिणामस्वरूप विपरीत निर्णय हो सकता था।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

21. किसी भी न्यायाधिकरण को, और विशेषकर सिविल न्यायालय को, न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते समय पक्षकारों के अधिकारों के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। हमें आश्चर्य हो रहा है कि यदि काज़मी की मृत्यु नहीं हुई होती तो प्रतिद्वंद्वी दावों की स्थिति क्या होती और उनकी आपत्ति को स्वीकार करते हुए, मुकदमे को स्वीकार्यता के आधार पर खारिज कर दिया गया होता। ऐसे मामले में, क्या इस बर्खास्तगी को समीउल्लाह के खिलाफ़ तैयार किए गए कथित आदेश के साथ जोड़ा जा सकता है? इसका उत्तर नकारात्मक होगा। या फिर, यहाँ जो स्थिति पैदा हुई है, उसे ही लें। दिनांक 27 अप्रैल, 2009 को काज़मी के नाम पर मुकदमा समाप्त कर दिया गया। यद्यपि सुश्री अरोड़ा ने सुनवाई के दौरान प्रस्तुत किया था कि तब से उपशमन को अलग रखने के लिए सफलतापूर्वक कदम उठाए गए हैं और इस तरह के प्रस्तुतिकरण के समर्थन में 12 दिसंबर, 2023 तक अतिरिक्त दस्तावेज दाखिल करने का आश्वासन दिया गया था, समय से परे ई-फाइल किए गए अतिरिक्त दस्तावेजों से यह पता नहीं चलता है कि (i) उपशमन को अलग रखा गया है, (ii) काज़मी के स्थान पर वारिसों/कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित किया गया है और (iii) मुकदमा अपनी मूल फ़ाइल और संख्या में बहाल हो गया है। परिणाम यह है कि मुख्य प्रत्यर्थी के विरुद्ध मुकदमा, उसकी इस आपत्ति पर विचारण न्यायालय द्वारा कोई निर्णय दिए बिना ही खारिज कर दिया जाता है कि ऐसे न्यायालय को मुकदमे पर विचार करने और उस पर विचार करने का अधिकार नहीं है।

22. हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि विरोधाभासी/असंगत आदेशों की ऐसी स्थिति से बचने के लिए आदेश VIII के नियम 10 के तहत शक्ति का उपयोग सावधानी, सतर्कता और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए, केवल तभी जब कई प्रतिवादियों में से कोई भी अपना लिखित बयान दाखिल नहीं करता है और यदि आवश्यक समझा जाता है तो वादी की ओर से साक्ष्य लेने के बाद पूरे मुकदमे का फैसला किया जा सकता है। जैसा कि वर्तमान मामले में, जहां कई प्रतिवादियों में से एक ने भी लिखित बयान दाखिल किया था, न्यायालय के लिए सी.पी.सी. के आदेश VIII के नियम 10 में दूसरे विकल्प को चुनना विवेक का विवेकपूर्ण प्रयोग होगा, जब तक कि, निश्चित रूप से, असाधारण परिस्थितियां मौजूद न हों जो पहले विकल्प का सहारा लेने को उचित ठहराती हों। वर्तमान मामले में, काज़मी द्वारा लिखित बयान दाखिल करके शिकायत में किए गए कथनों को नकारने के लिए यह आवश्यक था कि अपीलकर्ताओं के दावों को मौखिक और/या दस्तावेजी साक्ष्यों के द्वारा सिद्ध किया जाए, न कि प्रतिवादियों में से किसी एक के विरुद्ध अत्यंत लापरवाहीपूर्ण तरीके से मुकदमा चलाने का आदेश दिया जाए।

23. हम **स्वर्ण लता घोष बनाम एच.के. बनर्जी**¹¹¹ मामले में विचाराधीन तथ्यों और परिस्थितियों में काफी समानता पाते हैं। इस न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित धन-वाद की सुनवाई कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा की गई तथा साक्ष्य प्राप्त करने के पश्चात विद्वान एकल न्यायाधीश ने 17 अगस्त, 1962 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"15,000/- रुपये की डिक्री होगी, जिसमें 15,000/- रुपये पर 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज और लागत शामिल होगी। कोई अंतरिम ब्याज नहीं दिया जाएगा।"

उस आदेश के अनुसरण में एक डिक्री तैयार की गई। इस डिक्री के खिलाफ़ डिवीजन बेंच के समक्ष की गई अपील विफल हो गई। डिवीजन बेंच ने इस निष्कर्ष के लिए अस्पष्ट कारण बताए कि ट्रायल कोर्ट ने "मुकदमे में सही

¹¹¹ (1969) 1 एससीसी 709

फैसला सुनाया” और डिक्री में कुछ संशोधन के साथ अपील का निस्तारण कर दिया। अपील को स्वीकार करते हुए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हुए तथा मुकदमे को कानून के अनुसार सुनवाई के लिए प्रथम दृष्टया न्यायालय को वापस भेजते हुए, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि सीपीसी के आदेश XX, के नियम 1 से 8, आदेश XLIX, सीपीसी के नियम 3(5) में निहित स्पष्ट प्रावधान द्वारा, अपने साधारण या असाधारण मूल नागरिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एक चार्टर्ड उच्च न्यायालय पर लागू नहीं होते हैं और इसलिए, एक चार्टर्ड उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को सीपीसी के आदेश XX, के नियम 4(2) और 5 में निहित प्रावधानों के अनुसार सख्ती से निर्णय में कारणों को रिकॉर्ड करने के लिए बाध्य नहीं किया गया था। ऐसे प्रावधान के बावजूद, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 6 में निम्नलिखित दर्ज किया:

“6. न्यायालय में सिविल विवाद की सुनवाई का उद्देश्य, कानून और न्यायालय की प्रक्रिया के अनुसार, विवादित मामले के पक्षकारों के बीच न्यायिक निर्णय प्राप्त करना होता है। विवाद में रुचि रखने वाले पक्षकारों को विधि के साथ-साथ तथ्य के प्रश्नों पर अपने-अपने मामले प्रस्तुत करने का अवसर, पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के माध्यम से तथ्यों का पता लगाना, तथा विवादित तथ्यों पर निष्कर्ष के आधार पर विवाद का तर्कपूर्ण निर्णय द्वारा न्यायनिर्णयन तथा प्राप्त तथ्यों पर विधि का अनुप्रयोग, न्यायिक परीक्षण के आवश्यक गुण हैं। न्यायिक परीक्षण में, न्यायाधीश को न केवल उस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए जिसे वह न्यायसंगत मानता है, बल्कि, जब तक कि न्यायालय के व्यवहार या कानून द्वारा अन्यथा अनुमति न दी जाए, उसे विवाद से लेकर उसके समाधान तक की अंतिम मानसिक प्रक्रिया को भी दर्ज करना चाहिए। किसी विवादित दावे का न्यायिक निर्धारण, जहां विधि या तथ्य के सारवान प्रश्न उठते हैं, केवल तभी संतोषप्रद रूप से किया जा सकता है, जब वह सर्वाधिक ठोस कारणों द्वारा समर्थित हो, जो न्यायाधीश को स्वयं सुझाए जाते हैं; बिना कारणों द्वारा समर्थित विवादित मामले पर निर्णय देने वाला मात्र आदेश कोई निर्णय नहीं है। किसी विवादित दावे के निर्णय के समर्थन में कारणों को दर्ज करने से एक से अधिक उद्देश्य पूरे होते हैं। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निर्णय सनक या कल्पना का परिणाम न हो, बल्कि विवादित मामले के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण का परिणाम हो: इसका उद्देश्य यह भी सुनिश्चित करना है कि मामले का निर्णय कानून और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किया जाए। विवाद का कोई भी पक्षकार सामान्यतः यह जानने का हकदार होता है कि न्यायालय ने उसके विरुद्ध किस आधार पर निर्णय दिया है, तथा तब यह और भी अधिक हकदार होता है, जब निर्णय अपील के अधीन हो। इसके बाद अपीलीय अदालत के पास पर्याप्त सामग्री होगी जिसके आधार पर वह यह निर्धारित कर सकेगी कि क्या तथ्यों का सही ढंग से पता लगाया गया है, क्या कानून का सही ढंग से प्रयोग किया गया है और परिणामी निर्णय न्यायसंगत है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विद्वान ट्रायल जज ने अपने निष्कर्ष के समर्थन में कोई कारण दर्ज नहीं किया है, और अपील में उच्च न्यायालय ने केवल यह दर्ज किया है कि उनके विचार में वादी ने वाद में मामला पर्याप्त रूप से साबित कर दिया है।”

24. हालाँकि, यह एक अपीलीय डिक्री थी जिसकी जाँच करने के लिए इस न्यायालय को बुलाया गया था। हम समझते हैं कि हम उच्च न्यायालय द्वारा अपीलीय अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले निर्णय/आदेश की

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

सत्यता की जाँच नहीं कर रहे हैं, बल्कि सीपीसी की धारा 47 के तहत एक आपत्ति पर आदेश को मंजूरी देने वाले निर्णय की जाँच कर रहे हैं, जिसका दायरा सीमित है।

25. हमारा वास्तविक कार्य यह पता लगाना है कि क्या दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश के आधार पर तैयार की गई और अपीलकर्ताओं द्वारा निष्पादित की गई डिक्री पर प्रत्यर्थी 1 से 3 द्वारा सीपीसी की धारा 47 के तहत निष्पादन योग्य न होने के रूप में आपत्ति की जा सकती थी। सी.पी.सी. की धारा 47 डिक्री के निष्पादन से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण प्रावधानों में से एक है, जो यह अनिवार्य करता है कि निष्पादन न्यायालय, डिक्री के निष्पादन, निर्वहन या संतुष्टि के संबंध में वाद के पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उत्पन्न होने वाले सभी प्रश्नों का निर्धारण करेगा और ऐसे प्रश्नों पर अलग से निर्णय नहीं किया जा सकता है।

26. इस स्तर पर, सीपीसी की धारा 47 के दायरे और प्रकृति पर कुछ प्राधिकारियों का संदर्भ अनुपयुक्त नहीं होगा।

27. **वासुदेव धनजीभाई मोदी बनाम राजाभाई अब्दुल रहमान**¹²¹² मामले में, यह न्यायालय एक डिक्री की निष्पादनीयता के संबंध में सी.पी.सी. की धारा 47 के तहत आपत्ति के दायरे पर विचार कर रहा था। इसमें यह निर्धारित किया गया था कि केवल ऐसी डिक्री ही आपत्ति का विषय हो सकती है जो अमान्य हो, न कि ऐसी डिक्री जो विधि या तथ्यों के आधार पर त्रुटिपूर्ण हो। कानून निम्नलिखित शब्दों में निर्धारित किया गया था:

“6. किसी डिक्री को निष्पादित करने वाला न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता है: पक्षों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उसे डिक्री को उसके अर्थ के अनुसार लेना चाहिए और इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता है कि डिक्री कानून या तथ्यों के आधार पर गलत थी। जब तक अपील या पुनरीक्षण में उचित कार्यवाही द्वारा उसे रद्द नहीं कर दिया जाता, तब तक डिक्री भले ही वह त्रुटिपूर्ण हो, फिर भी पक्षकारों के बीच बाध्यकारी होती है।

7. जब कोई डिक्री अमान्य हो, उदाहरण के लिए, जब उसे किसी व्यक्ति के कानूनी प्रतिनिधि को रिकॉर्ड पर लाए बिना पारित किया जाता है जो डिक्री की तिथि पर मर चुका था, या बिना प्रमाण पत्र के शासक राजकुमार के विरुद्ध, निष्पादन की मांग की जाती है, तो उस संबंध में निष्पादन की कार्यवाही में आपत्ति उठाई जा सकती है। पुनः, जब डिक्री किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की जाती है, जिसे उसकी वैधता के संबंध में आक्षेप करने का कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है, तो निष्पादन कार्यवाही में आक्षेप उठाया जा सकता है, यदि आक्षेप अभिलेख पर अंकित हो: जहां डिक्री पारित करने के न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में आपत्ति रिकॉर्ड में नहीं दिखाई देती है और परीक्षण के दौरान उठाए गए और तय किए गए प्रश्नों की जांच की आवश्यकता होती है या जो उठाए जा सकते थे लेकिन नहीं उठाए गए हैं, निष्पादन न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र के अभाव के आधार पर भी डिक्री की वैधता के बारे में आपत्ति पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा...”।

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

¹²¹² (1970) 1 एससीसी 670

28. **धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय**¹³ मामले में, इस न्यायालय ने धारा 47, सीपीसी के तहत न्यायालय की शक्तियों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया:

“24. संहिता की धारा 47 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग सूक्ष्म है तथा बहुत ही संकीर्ण निरीक्षण क्षेत्र में स्थित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निष्पादन न्यायालय संहिता की धारा 47 के अंतर्गत डिक्री की निष्पादनीयता पर आपत्ति की अनुमति दे सकता है, यदि यह पाया जाता है कि डिक्री प्रारम्भ से ही शून्य और अमान्य है, इस आधार को छोड़कर कि डिक्री कानून के अंतर्गत निष्पादन योग्य नहीं है, क्योंकि या तो उसे कानून के ऐसे प्रावधान की अज्ञानता में पारित किया गया था या कानून को पारित करने के पश्चात डिक्री को निष्पादन योग्य न बनाते हुए प्रख्यापित किया गया था...।”

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

29. उच्च न्यायालय के आदेश की वैधता, साथ ही निष्पादन न्यायालय के आदेश की वैधता, जिसे पूर्व ने बरकरार रखा, का परीक्षण कानून की स्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और यह ध्यान में रखते हुए कि निष्पादन न्यायालय की शक्तियां, हालांकि अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय की तुलना में संकीर्ण हैं, निष्पादन आवेदन को खारिज करने के लिए प्रयोग की जा सकती हैं यदि निष्पादन के लिए रखा गया आदेश स्पष्ट रूप से न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी से ग्रस्त पाया जाता है, जिसने इसे कानून की नजर में अमान्य बना दिया है।

30. एक से अधिक कारणों से, हम यह मानने का प्रस्ताव करते हैं कि निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय का यह मानना सही था कि प्रत्यर्थी 1 से 3 द्वारा डिक्री की निष्पादनीयता के संबंध में उठाई गई आपत्ति उचित थी।

31. उपर्युक्त निर्णयों के आलोक में जो बात महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, वह है कानूनी शब्द 'अधिकार क्षेत्र' का महत्व, तथा यह प्रश्न कि क्या विचारण न्यायालय के पास 5 अगस्त, 1991 को आदेश पारित करने तथा उसके बाद 11 नवम्बर, 1991 को डिक्री पर हस्ताक्षर करने का अधिकार था।

32. 'अधिकार क्षेत्र' का क्या अर्थ है? आगामी चर्चा में, हम प्राचीन काल के कुछ निर्णयों से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहते हैं जो समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

33. एक शताब्दी से भी अधिक समय पहले **हृदयनाथ रॉय बनाम रामचंद्र बरना शर्मा**¹⁴ मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ की ओर से बोलते हुए, ए.सी.जे. सर आशुतोष मुखर्जी के विवेक से हमें यह समझने में लाभप्रद रूप से सहायता मिलती है कि 'अधिकार क्षेत्र', 'अधिकार क्षेत्र का अभाव' और 'अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में त्रुटि' का क्या अर्थ है। प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है:

“... पुस्तकों में दर्ज मामलों की जांच से 'अधिकार क्षेत्र' शब्द को परिभाषित करने के कई प्रयास सामने आते हैं, जिसे 'कानून और तथ्य के मुद्दों को सुनने और निर्धारित करने की शक्ति' बताया गया है; 'वह प्राधिकार जिसके द्वारा न्यायिक अधिकारी मामलों का संज्ञान लेते हैं और निर्णय लेते हैं; 'किसी विधिक विवाद की सुनवाई और निर्णय करने का प्राधिकार'; 'किसी वाद में

¹³ ¹³(2001) 6 एससीसी 534

¹⁴ ¹⁴1920 एससीसी आनलाइन कैल 85 : आईएलआर LXVIII, कैल 138

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

पक्षकारों के बीच विवाद के विषय-वस्तु की सुनवाई और निर्धारण करने तथा उन पर न्यायिक शक्ति का न्यायनिर्णयन या प्रयोग करने की शक्ति'; 'न्यायालय के समक्ष मुद्दों पर सुनवाई, निर्धारण और निर्णय सुनाने की शक्ति'; 'वह शक्ति या प्राधिकार जो विधायिका द्वारा न्यायालय को पक्षकारों के बीच विवादों को वहन करने और निर्धारित करने तथा निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए प्रदत्त किया जाता है'; 'तथ्यों की जांच करने, कानून को लागू करने, निर्णय सुनाने और उसे कार्यान्वित करने की शक्ति...न्यायालय का यह अधिकार क्षेत्र विभिन्न परिस्थितियों के कारण सीमित या सीमित हो सकता है। इस प्रकार, अधिकार क्षेत्र पर विषय-वस्तु के स्थान, मूल्य और प्रकृति के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए.... प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र, आर्थिक अधिकार क्षेत्र और विषय-वस्तु के अधिकार क्षेत्र में यह वर्गीकरण स्पष्ट रूप से मौलिक प्रकृति का है। इस प्रकार के अधिकार क्षेत्र को देखते हुए, हमें अधिकार क्षेत्र के अस्तित्व से अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के बीच अंतर करने में सावधानी बरतनी चाहिए; क्योंकि अधिकार क्षेत्र की धारणा और प्रयोग में वैधानिक अपेक्षाओं का अनुपालन करने में विफलता के परिणाम मौलिक रूप से भिन्न होते हैं। किसी मामले पर निर्णय करने का प्राधिकार ही अधिकारिता बनाता है, न कि उसमें दिया गया निर्णय; और जब व्यक्ति और विषय-वस्तु पर अधिकारिता हो, तो मामले में उठने वाले अन्य सभी प्रश्नों पर निर्णय उस अधिकारिता का प्रयोग मात्र है। किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बनाने और बढ़ाने के लिए आवश्यक शर्तों या उस अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के तरीके से जुड़े प्रतिबंधों को अधिकार क्षेत्र की अवधारणा में किस हद तक शामिल किया जाना चाहिए, यह कभी-कभी बहुत ही सूक्ष्मता का प्रश्न होता है... लेकिन अधिकार क्षेत्र के अस्तित्व और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के बीच अंतर को हमेशा ध्यान में नहीं रखा गया है और इससे कभी-कभी भ्रम की स्थिति पैदा हो गई है... इस प्रकार हमें इस प्रमुख स्थिति को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय के समक्ष कानूनी रूप से मामला होना चाहिए तथा सुनवाई के साथ-साथ निर्णय भी होना चाहिए। अधिकारिता के बिना किसी न्यायालय द्वारा सुनाया गया निर्णय शून्य है, इस सुविदित शर्त के अधीन कि जब किसी न्यायालय के अधिकारिता को चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय अधिकारिता के प्रश्न का निर्धारण करने के लिए सक्षम है, यद्यपि जांच का परिणाम यह हो सकता है कि उसके समक्ष लाए गए मामले पर विचार करने के लिए उसके पास कोई अधिकारिता नहीं है।

इसमें उल्लिखित मामलों के अलावा, विशेष रूप से न्यायमूर्ति श्रीनिवास अयंगर के तुलजाराम बनाम गोपाल [32 मैड एलजे 434; 21 मैड एलजे 220 (1916)] के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां सही नियम यह बताया गया था कि यदि किसी न्यायालय के पास किसी मुकदमे की सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार है और किसी विशेष प्रकार के आदेश पारित करने का अधिकार है, तो यह तथ्य कि उसने एक ऐसा आदेश पारित किया है, जिसे उसे उस मुकदमे की परिस्थितियों में नहीं पारित करना चाहिए था, तो अधिकार क्षेत्र की पूरी तरह कमी या नुकसान को इंगित नहीं करता है जिससे आदेश को अमान्य कर दिया जाए।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

34. **हृदय नाथ रॉय (उपरोक्त)** को इस न्यायालय के समन्वय पीठ के निर्णय, **ऑफिशियल ट्रस्टी बनाम सचिन्द्र नाथ चटर्जी**¹⁵ में स्वीकृति मिली। **सचिन्द्र नाथ चटर्जी (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे पुनः प्रस्तुत हैं:

“12. यह स्पष्ट है कि यदि विद्वान न्यायाधीश को प्रश्नगत आदेश पारित करने का अधिकार नहीं था तो यह आदेश निरर्थक एवं अमान्य है। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि यदि उनके पास उनके समक्ष प्रस्तुत दलील पर निर्णय देने का क्षेत्राधिकार था, तो यह तथ्य कि उन्होंने गलत आदेश दिया था या यहां तक कि अवैध आदेश दिया था, उसकी वैधता को प्रभावित नहीं कर सकता...।

15. *** यह स्पष्ट है कि किसी न्यायालय को किसी विशेष मामले पर निर्णय देने का क्षेत्राधिकार दिए जाने से पहले उसके पास न केवल लाए गए मुकदमे की सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार होना चाहिए, बल्कि उसके पास मांगे गए आदेश पारित करने का प्राधिकार भी होना चाहिए। यह पर्याप्त नहीं है कि उसे मुकदमे की विषय-वस्तु के संबंध में कुछ क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। इसके अधिकार क्षेत्र में विवादित प्रश्नों पर सुनवाई और निर्णय करने की शक्ति, पक्षों के बीच उत्पन्न विशेष विवाद पर सुनवाई और निर्णय करने का प्राधिकार शामिल होना चाहिए...।”

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

35. सार यह है कि न्यायालय को न केवल दावे पर विचार करने और उस पर विचार करने के लिए विवाद के विषय-वस्तु के संबंध में अधिकार-क्षेत्र प्राप्त होना चाहिए, बल्कि मांगी गई राहत प्रदान करने का अधिकार-क्षेत्र भी प्राप्त होना चाहिए। एक बार जब यह मान लिया जाता है कि दोनों मामलों में अधिकार क्षेत्र उपलब्ध है, तो यह महत्वहीन है कि अधिकार क्षेत्र का प्रयोग गलत तरीके से किया गया हो। किसी त्रुटिपूर्ण निर्णय को ‘अधिकार क्षेत्र के बिना’ पारित किया गया नहीं कहा जा सकता। इसलिए, यह आवश्यक है कि अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र से रहित निर्णय और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में की गई त्रुटि से ग्रस्त निर्णय के बीच अंतर को ध्यान में रखा जाए।

36. बहुत दूर के निर्णयों की ओर बढ़ते हुए, हम देखते हैं कि इस न्यायालय ने **रफीक बीबी बनाम सैयद वलीउद्दीन**¹⁶ मामले में **वासुदेव धनजीभाई मोदी (उपरोक्त)** पर अवलम्ब लेते हुए, उन परिस्थितियों के संबंध में मूल्यवान टिप्पणियां की हैं जिनमें पारित आदेश को अमान्य माना जा सकता है। **रफीक बीबी (उपरोक्त)** में की गई प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

“6. 'शून्य' क्या है, इसे स्पष्ट रूप से समझना होगा। किसी डिक्री को अधिकार क्षेत्र से बाहर और इसलिए अमान्य कहा जा सकता है, यदि डिक्री पारित करने वाले न्यायालय ने उस अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण कर लिया हो, जो उसके पास नहीं था; अधिकार क्षेत्र के मात्र गलत प्रयोग से अमान्यता नहीं होती। डिक्री पारित करने वाले न्यायालय में अधिकार क्षेत्र का अभाव स्पष्ट होना चाहिए, ताकि निष्पादन न्यायालय अधिकार क्षेत्र के अभाव के आधार पर

¹⁵ ¹⁵ एआईआर 1969 एससी 823

¹⁶ ¹⁶ (2004) 1 एससीसी 287

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

ऐसी अमान्यता का संज्ञान ले सके, अन्यथा यह सामान्य नियम लागू रहेगा कि निष्पादन न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता।

7. दो बातें स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी चाहिए। सबसे पहले, 'अदालत किसी आदेश को तभी अमान्य करेगी जब सही कार्यवाही और परिस्थितियों में सही व्यक्ति द्वारा सही उपाय मांगा गया हो। आदेश 'अमान्य' और 'शून्य' हो सकता है, लेकिन इन शब्दों का कोई पूर्ण अर्थ नहीं है: उनका अर्थ सापेक्ष है, जो किसी विशेष स्थिति में राहत देने के लिए अदालत की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि अवैध सापेक्षता के इस सिद्धांत को ध्यान में रखा जाए, तो कानून को उन मामलों में न्यायसंगत और उचित रूप से संचालित किया जा सकता है, जहां अल्ट्रा वायर्स के सिद्धांत को कठोरता से लागू करने पर अस्वीकार्य परिणाम उत्पन्न होंगे। (प्रशासनिक कानून, वेड और फोर्सिथ, 8 वां संस्करण, 2000, पृष्ठ 308।) ...

8. किसी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जिसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और फलस्वरूप वह अमान्य है तथा निष्पादन योग्य नहीं है, तथा न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जो केवल अवैध है या जिसे विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पारित नहीं किया गया है, के बीच अंतर होता है। प्रक्रिया की अवैधता या अनियमितता से ग्रस्त डिक्री को निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य नहीं कहा जा सकता; ऐसी डिक्री से व्यथित व्यक्ति का उपाय यह है कि वह उसे विधिवत् गठित कानूनी कार्यवाही में या उच्चतर न्यायालय द्वारा अपास्त करा ले, अन्यथा उसे डिक्री के आदेश का पालन करना होगा। सक्षम न्यायालय द्वारा पारित आदेश को किसी भी अतिरिक्त आक्रमण या आकस्मिक कार्यवाही द्वारा उसकी प्रभावकारिता से वंचित नहीं किया जा सकता है।"

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

37. इसके अलावा, **रफीक बीबी (उपरोक्त)** को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि डिक्री के सामने अधिकार क्षेत्र का अभाव स्पष्ट होना चाहिए, ताकि निष्पादन करने वाली अदालत यह निष्कर्ष निकाल सके कि डिक्री अमान्य है। अतः यह स्पष्ट है कि सभी अनियमित या गलत आदेश आवश्यक रूप से निरस्त नहीं होंगे। किसी त्रुटिपूर्ण या अवैध निर्णय, जो शून्य न हो, पर निष्पादन या आकस्मिक कार्यवाही में आपत्ति नहीं की जा सकती। इस कथन की पुष्टि इस न्यायालय के तीन (तीन) माननीय न्यायाधीशों की पीठ ने **बलवंत एन विश्वामित्र बनाम यादव सदाशिव मुले**¹⁷ मामले में भी की थी।

38. उपरोक्त सभी निर्णयों के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकारिता के अंतर्गत सिविल न्यायालय को यह जांच करने का अधिकार है कि क्या वादी द्वारा उसके समक्ष मामला विधि द्वारा निर्धारित तरीके से लाया गया है और क्या उसके द्वारा दावा किए गए अनुतोष के लिए उचित मामला प्रस्तुत किया गया है। जब भी ऐसी पात्रता स्थापित हो जाती है, तो निर्णय दिए जाने तक की कोई भी त्रुटि अधिकार क्षेत्र के भीतर की त्रुटि मानी जा सकती है। इस बात की जांच कि क्या सिविल न्यायालय किसी मुकदमे पर विचार करने और उस पर विचार करने का हकदार है, उसे सी.पी.सी. की धारा 9 और संबंधित अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए करनी होगी, जो आपत्तिकर्ता के अनुसार, मुकदमे पर रोक लगाते हैं।

¹⁷ ¹⁷(2004) 8 एससीसी 706

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

39. यद्यपि वर्तमान मामले में यह प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से नहीं उठा है, फिर भी हम यह भी कहना चाहते हैं कि अधिकारिता का प्रश्न उस स्तर पर भी महत्वपूर्ण हो जाता है, जब न्यायालय अंतरिम राहत प्रदान करने के प्रश्न पर विचार करता है। जहां सिविल न्यायालय के समक्ष किसी वाद में अंतरिम अनुतोष का दावा किया जाता है और ऐसे अनुतोष के अनुदान से प्रभावित होने वाला पक्षकार, या वाद का कोई अन्य पक्षकार, उसके पोषणीयता का प्रश्न उठाता है या यह कि वह विधि द्वारा वर्जित है और इस आधार पर यह भी तर्क करता है कि अंतरिम अनुतोष प्रदान नहीं किया जाना चाहिए, वहां, यदि किसी भी रूप में अनुतोष प्रदान किया जाता है, तो उसके पहले कम से कम प्रथम दृष्टया यह संतुष्टि हो जानी चाहिए कि वाद पोषणीय है या वह विधि द्वारा वर्जित नहीं है। वादपत्र में किए गए कथनों, अंतरिम राहत के लिए आवेदन और उस पर लिखित आपत्ति, साथ ही आपत्ति के समर्थन में उद्धृत प्रासंगिक कानून की सराहना के आधार पर ऐसी संतुष्टि, अंतरिम राहत के लिए प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होने के न्यायालय के तर्क का एक हिस्सा होगी, कि सुविधा का संतुलन अनुदान के पक्ष में है और अनुदान न दिए जाने से अपूरणीय क्षति और पूर्वाग्रह पैदा होगा। किसी न्यायालय के लिए यह अनुचित होगा कि वह स्थिरता के प्रश्न पर अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने से परहेज करे, फिर भी, इस धारणा पर अस्थायी संरक्षण प्रदान करने के लिए आगे बढ़े कि स्थिरता के प्रश्न को आदेश XIV, सीपीसी के नियम 2 के तहत प्रारंभिक मुद्दे के रूप में तय किया जाना है। यह सत्ता का अनुचित प्रयोग माना जाएगा। यदि न्यायालय अंतरिम राहत के लिए आवेदन पर सुनवाई के समय इस राय पर है कि वाद कानून द्वारा वर्जित है या अन्यथा सुनवाई योग्य नहीं है, तो वह लिखित बयान दाखिल होने के बाद प्रारंभिक मुद्दा तैयार किए बिना इसे खारिज नहीं कर सकता, लेकिन अंतरिम राहत देने से इनकार करने के लिए निश्चित रूप से ऐसी राय दे सकता है। तथापि, यदि कोई असाधारण स्थिति उत्पन्न होती है, जहां मुकदमे की स्वीकार्यता के बिंदु पर निर्णय लेने में समय लग सकता है और ऐसे निर्णय के लंबित रहने तक अस्थायी संरक्षण प्रदान न करने से अपरिवर्तनीय परिणाम हो सकते हैं, तो न्यायालय अपने द्वारा अपनाई गई कार्रवाई को उचित ठहराते हुए ऊपर बताए गए तरीके से उचित आदेश जारी कर सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि आवश्यक हो तो ऐसा आदेश पारित किया जा सकता है, ताकि राहत का दावा करने वाले पक्ष को अपूरणीय क्षति या चोट या अनुचित कठिनाई से बचाया जा सके और/या यह सुनिश्चित किया जा सके कि अदालत द्वारा हस्तक्षेप न करने के कारण कार्यवाही निष्फल न हो जाए।

40. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, काजमी ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष उनके द्वारा दायर लिखित बयान में मुकदमे की स्वीकार्यता को चुनौती दी थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया था कि मुकदमे की संपत्ति भूमिधारी भूमि थी, जिसके कारण मुकदमा यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 331 के साथ-साथ विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 41 (एच) के तहत भी वर्जित था और इस प्रकार, सिविल कोर्ट के समक्ष स्वीकार्य नहीं था। ऐसी स्थिति में ट्रायल कोर्ट से अपेक्षित था कि वह कम से कम प्रथम दृष्टया इस बात पर संतुष्टि दर्ज करे कि वाद स्वीकार्य है और फिर वह ऐसे आदेश पारित करे, जिन्हें वह परिस्थितियों में उचित समझे। दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश पर एक नजर डालना हमें यह बताने के लिए पर्याप्त है कि ट्रायल कोर्ट ने, किसी भी शब्द में, सीपीसी के आदेश VIII, नियम 10 के तहत समीउल्लाह के खिलाफ मुकदमा चलाने से पहले, इस बात पर कोई निर्णय नहीं लिया कि क्या वह उसके समक्ष याचिका पर फैसला करने के लिए कानूनी रूप से हकदार है। हमने पाया है कि मुकदमे की सुनवाई करने की क्षमता का प्रश्न, मुकदमे में निर्णय के लिए उठने वाले कई मुद्दों में से पहला था और ट्रायल कोर्ट के सामने एक महत्वपूर्ण मुद्दे की उपस्थिति के बावजूद, जिसकी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अगर जांच की जाती और काज़मी के पक्ष में जवाब दिया जाता, तो इससे अधिकारिता समाप्त हो जाती, उसने इंतज़ार नहीं करना पसंद किया और ऐसा करने की अपनी क्षमता के बारे में एक शब्द भी कहे बिना समीउल्लाह के खिलाफ फैसला सुना दिया।

41. वर्तमान मामले की कानूनी और तथ्यात्मक स्थिति को ऊपर उल्लेखित करते हुए, हम मानते हैं कि किसी विवाद के गुण-दोष के आधार पर किसी न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में ऐसे विवाद पर निर्णय लेने की अपनी क्षमता पर पहले निर्णय लिए बिना दिया गया निर्णय अधिकार क्षेत्र की अवैध और गलत धारणा पर दिया गया निर्णय माना जाएगा और, इस प्रकार, अंतर्निहित अधिकारिता के अभाव के कारण इसे आक्षेपनीय माना जाएगा तथा कानून की नज़र में इसे अमान्य माना जाएगा; तार्किक परिणाम के रूप में, दिनांक 5 अगस्त, 1991 का आदेश प्रारम्भ से ही अमान्य माना जाएगा तथा इसके आधार पर तैयार की गई डिक्री निष्पादन योग्य नहीं होगी।

42. एक अन्य कारण भी है जिसे हम निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखने के आधार के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

43. एक बार फिर **बलराम तनेजा (उपरोक्त)** का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां कानून को संक्षेप में इस प्रकार दोहराया गया है:

“41. इस मामले में एक और त्रुटि है जो एकल न्यायाधीश द्वारा पारित और खंडपीठ द्वारा बरकरार रखे गए ‘निर्णय’ से संबंधित है।

42. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(9) में परिभाषित ‘निर्णय’ का अर्थ न्यायाधीश द्वारा किसी डिक्री या आदेश के लिए आधारों के बारे में दिया गया कथन है। एक निर्णय में क्या शामिल होना चाहिए, यह आदेश 20 नियम 4(2) में इंगित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि एक निर्णय में ‘मामले का संक्षिप्त विवरण, निर्धारण के लिए बिंदु, उस पर निर्णय और ऐसे निर्णय के कारण शामिल होंगे’। यह एक स्वतः पूर्ण दस्तावेज होना चाहिए जिससे यह पता चले कि मामले के तथ्य क्या थे और वह कौन सा विवाद था जिसे न्यायालय द्वारा तय करने का प्रयास किया गया और किस तरीके से। जिस तर्क प्रक्रिया के आधार पर न्यायालय अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा और मुकदमे पर आदेश दिया, वह निर्णय में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

43. ***

44. ***

45. प्रत्यर्थी 1 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आदेश 20 नियम 4(2) के प्रावधान केवल विवादित मामलों पर ही लागू होंगे क्योंकि केवल उन्हीं मामलों में इस नियम में उल्लिखित ‘निर्धारण के लिए बिंदु’ इंगित करने होंगे, न कि ऐसे मामले में जिसमें प्रत्यर्थियों द्वारा लिखित बयान दायर नहीं किया गया है और वादपत्र में दिए गए तथ्यों को स्वीकार कर लिया गया माना जाता है। हम सहमत नहीं हैं। चाहे वह ऐसा मामला हो जिसमें प्रत्यर्थियों द्वारा लिखित बयान दाखिल करके विरोध किया जाता है, या ऐसा मामला हो जो एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ता है और अंततः एकपक्षीय मामले के रूप में निर्णय दिया जाता है, या ऐसा मामला हो जिसमें लिखित बयान दाखिल नहीं किया जाता है और मामले का निर्णय आदेश 8 नियम 10 के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अंतर्गत किया जाता है, न्यायालय को निर्णय लिखना होता है जो संहिता के प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए या कम से कम उस तर्क को अवश्य बताना चाहिए जिसके द्वारा विवाद का समाधान किया जाता है।

46. *** भले ही यह परिभाषा धारा 2(9) में निहित न हो या इसकी विषय-वस्तु सी.पी.सी. के आदेश 20 नियम 4(2) में इंगित न की गई हो, तब भी निर्णय का अर्थ तर्क की वह प्रक्रिया होगी जिसके द्वारा एक न्यायाधीश एक पक्ष के पक्ष में और दूसरे के विरुद्ध मामले का निर्णय करता है। न्यायिक कार्यवाही में मनमाने आदेश नहीं दिए जा सकते। एक न्यायाधीश केवल यह नहीं कह सकता कि 'मुकदमा मंजूर किया गया' या 'मुकदमा खारिज किया गया'। मामले को किसी न किसी तरह से तय करने के लिए तर्क की पूरी प्रक्रिया तय करनी होगी। वर्तमान निर्णय में यह त्रुटि स्पष्ट है और इसी कारण से भी निर्णय को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।"

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

जैसा कि धारा 2(9), सी.पी.सी. में परिकल्पित है, हम इस अवलोकन से सहमत हैं कि एक निर्णय में तर्क की वह प्रक्रिया शामिल होनी चाहिए जिसके द्वारा न्यायालय विवाद को हल करने के लिए अपने निष्कर्ष पर पहुंचे और परिणामस्वरूप मुकदमे पर निर्णय दे।

44. यह निर्विवाद है कि यदि कोई "निर्णय", सीपीसी के आदेश VIII, नियम 10 के तहत अदालत द्वारा सुनाया जाता है, तो उसे सीपीसी के आदेश XX, के नियम 4(2) की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा, और इस प्रकार इसकी धारा 2(9) में प्रदान की गई परिभाषा के अनुरूप होना होगा।

45. इसके अलावा, सी.पी.सी. के आदेश VIII के नियम 10 का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से भी हमें यह मौलिक आदेश पता चलता है कि ऐसे मामले में जहां न्यायालय प्रत्यर्थी द्वारा लिखित बयान दाखिल करने में विफल रहने पर शक्ति का प्रयोग करता है, वहां "डिक्री" को "निर्णय" के बाद लागू किया जाएगा। इसलिए, केवल सी.पी.सी. के प्रावधानों के अनुरूप एक "निर्णय" ही "डिक्री" तैयार करने का कारण बन सकता है। जैसा कि वर्तमान मामले के अभिलेख से स्पष्ट है, ट्रायल कोर्ट की इस स्वतः दी गई राय के अलावा कि मामला आदेश VIII के नियम 10 के अंतर्गत आगे बढ़ने के लिए उपयुक्त है और समीउल्लाह के मामले में वाद को निषेधाज्ञा के साथ निस्तारित किया जाना चाहिए, 5 अगस्त, 1991 के आदेश में सी.पी.सी. के अनुसार "निर्णय" में शामिल होने वाली कोई भी सामग्री नहीं दिखाई देती है।

46. हम माननीय मुख्य न्यायाधीश पी.बी. मुखर्जी, द्वारा 'द न्यू ज्यूरिस्प्रुडेंस: द ग्रामर ऑफ मॉडर्न लॉ' में हमें दिए गए ज्ञान के उत्कृष्ट शब्दों पर ध्यान देना उचित समझते हैं, जहां विद्वान लेखक कहते हैं:

"एक अच्छे निर्णय की सर्वोच्च आवश्यकता है तर्क। निर्णय का मूल्य उसके तर्क के बल पर होता है। किसी निर्णय का महत्व, उसका बाध्यकारी चरित्र या उसका प्रेरक चरित्र, तर्क की प्रस्तुति और अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। इसलिए, तर्क ही अच्छे निर्णय की आत्मा और भावना है।"

47. न्याय प्रदान करने की प्रणाली के प्रमुख सिद्धांतों में से यह एक है कि निर्णय/आदेश के रूप में किसी सक्षम न्यायिक मंच का कोई भी फैसला, जो कार्यवाही में पक्षों के अधिकारों और दायित्वों को निर्धारित करता है, पक्षों को यह अवश्य सूचित करना चाहिए कि परिणाम क्या है और एक पक्ष को सफलता क्यों मिली और दूसरे को नहीं – 'क्यों' कारण बनता है और 'क्या' निष्कर्ष है। किसी भी अन्य बात के अतिरिक्त, निष्कर्ष के समर्थन में कारण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(कारणों) की आवश्यकता पर जोर देना, निर्णायक द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर विवेक के प्रयोग की गारंटी देता है, साथ ही असफल पक्ष को उच्चतर न्यायालय के समक्ष कारणों का परीक्षण करने का अवसर भी प्रदान करता है।

48. देश की सभी सिविल अदालतों को अपने न्यायिक कार्य को सी.पी.सी. के प्रावधानों के अनुसार विनियमित करना होगा। ऐसे प्रावधानों का कोई भी गंभीर उल्लंघन, जिसमें यहां उल्लिखित उल्लंघन भी शामिल है, अधिकार-बाह्य माना जाएगा।

49. आइए अब हम जांच करें कि क्या सी.पी.सी. की धारा 2(2) के दायरे में कोई 'डिक्री' है। धारा 2(2) नीचे पुनः प्रस्तुत है:

(2) "डिक्री" से ऐसे न्यायनिर्णयन की प्ररूपिक अभिव्यक्ति अभिप्रेत है, जहां तक कि वह उसे अभिव्यक्त करने वाले न्यायालय से सम्बन्धित है, वाद में के सभी या किन्हीं विवादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चयक रूप से अवधारण करता है और वह या तो प्रारम्भिक या अन्तिम हो सकेगी। यह समझा जाएगा कि इसके अन्तर्गत वादपत्र का नामंजूर किया जाना और धारा 144 के भीतर के किसी प्रश्न का अवधारण आता है किन्तु इसके अन्तर्गत-

(क) न तो कोई ऐसा न्यायनिर्णयन आएगा जिसकी अपील, आदेश की अपील की भांति होती है; और

(ख) न व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश आएगा।

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

50. दिनांक 11 नवम्बर, 1991 को ट्रायल कोर्ट द्वारा हस्ताक्षरित डिक्री रिकार्ड में नहीं है। फिर भी, पुनरावृत्ति की कीमत पर, हम रिकॉर्ड करते हैं कि दिनांक 5 अगस्त, 1991 के आदेश की जांच से इस मुकदमे में विवादित किसी भी मामले के संबंध में पक्षों के अधिकारों के निर्धारण के लिए कोई निर्णय सामने नहीं आता है, और इसलिए, अब तक तैयार की गई डिक्री न्यायनिर्णय/निर्धारण की औपचारिक अभिव्यक्ति नहीं है क्योंकि धारा 2(2) के अर्थ के भीतर डिक्री की आवश्यकताओं के अनुरूप कोई न्यायनिर्णय/निर्धारण नहीं किया गया है। इस संबंध में, हम उच्च न्यायालय और निष्पादन न्यायालय दोनों के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि कानून की नजर में यह कोई डिक्री नहीं है।

51. इसलिए, हम मानते हैं कि एक निर्णय या आदेश (वर्तमान प्रकृति का) के बाद आने वाली डिक्री कानून की दृष्टि में निष्पादन योग्य नहीं होगी और यदि उसका निष्पादन मांगा जाता है, तो सीपीसी की धारा 47 के तहत एक आवेदन में आपत्ति के लिए स्वतंत्र होगा।

निष्कर्ष

52. ऊपर उल्लिखित कारणों से, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ट्रायल कोर्ट के पास सीपीसी के आदेश VIII के नियम 10 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए समीउल्लाह के खिलाफ मुकदमे पर फैसला देने का कोई अधिकार नहीं था।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

53. चुनौती दिए गए उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। इसे बरकरार रखा जाता है और अपील, साथ में लंबित सभी आवेदन खारिज किए जाते हैं। पक्षकार अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

54. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय, या उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालयों की टिप्पणियों के किसी भी भाग को किसी विशेष मामले में या किसी भी तथ्यात्मक पहलू पर राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जाएगा। यदि किसी भी पक्ष द्वारा इस संबंध में संपर्क किया जाता है, तो वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व का निर्धारण, क्रेता के पक्ष में बिक्री विलेख की वैधता पर निर्णय, या किसी अन्य विवादास्पद मुद्दे पर निर्णय, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले मंच के समक्ष खुला छोड़ दिया जाता है।

55. हम जानते हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत अंतरिम आवेदन संख्या 4/2013 के अनुसरण में, इस न्यायालय ने दिनांक 14 मार्च, 2014 को संपत्ति के संबंध में श्री सूर्यनारायण सिंह को कोर्ट रिसीवर (एतस्मिन्पश्चात् कोर्ट रिसीवर) नियुक्त किया था। पहले से नियुक्त कोर्ट रिसीवर को तत्काल पदमुक्त कर दिया जाएगा। यदि कोई अवैतनिक पारिश्रमिक है तो उसका भुगतान अपीलकर्ताओं द्वारा किया जाएगा।

56. हालांकि, न्यायालय रिसीवर अपीलकर्ताओं के साथ-साथ प्रत्यर्थी 1 से 3 को दो महीने के भीतर वाद संपत्ति के संबंध में आय और व्यय का लेखा उपलब्ध कराएगा तथा दोनों पक्षों में से किसी का भी दावा कानून के अनुसार उठाए जाने और उसका समाधान किए जाने के लिए स्वतंत्र रहेगा।

हेडनोट्स तैयार किये गये: अंकित ज्ञान द्वारा

मामले का परिणाम: अपील खारिज।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।